बोए पेड़ बबूल के, आम कहॉ से होए

यह सच है कि पूरी दुनियां के वातावरण में लगातार तापवृद्धि हो रही है, जो एक चिंता का विषय है, तथा पूरी दुनियां के लोग इस चिंता का समाधान खोज रहे हैं। किन्तु मैं लम्बे समय से लिख रहा हूॅ कि इस पर्यावरणीय तापवृद्धि की अपेक्षा पूरी दुनियां के मानव स्वभाव में भी लगातार तापवृद्धि हो रही है और यह तापवृद्धि पर्यावरणीय तापवृद्धि से कई गुना अधिक खतरनाक है। साथ ही इस तापवृद्धि के प्रति पूरी दुनियां का कोई भी देश जरा भी चिंतित नहीं है। समाधान की ओर सोचने का तो कोई प्रश्न ही नहीं है।

स्पष्ट है कि मानव स्वभाव तापवृद्धि का प्रभाव भारत पर कुछ अधिक ही दिख रहा है। आये दिन ऐसी हिंसक घटनाएॅ घटित हो रही हैं जिसके पीछे न कोई योजना है, न ही कोई स्वार्थ, और न ही कोई विवाद। तात्कालिक क्षणिक आवेश में ऐसी–ऐसी घटनाएॅ घटित हो जा रही हैं। दो दिनों पूर्व ही नारंग नामक युवक को दिल्ली की विकास पुरी में क्रिकेट देखते खेलते लाठी डण्डों से मार दिया गया। न कोई दुश्मनी, न कोई स्वार्थ। कुछ दिनों पूर्व ही झारखण्ड में दो पशु व्यापारियों को बिना कारण मारकर टांग दिया गया। इसके पूर्व उत्तर प्रदेश में भी गोमांस की अफवाह पर एक मुस्लिम युवक की हत्या कर दी गई। यदि हम देश भर का सर्वे करे तो पूरे देश में अनेक ऐसी अकारण हत्याएॅ घटित हो रही है जिनका कोई सिर पैर नहीं होता, न ही कोई स्पष्ट कारण होता है। सड़क पर साईड न देने, या ट्रेन में सीट के विवाद तक में ऐसी हत्याएॅ सुनने को मिलने लगी है। भारत एक शांतिप्रिय देश है किन्तु भारत में ही इस तरह मानव स्वभाव में परिवर्तन पर विचार भी करना होगा तथा इसके कारण भी खोजने होंगे।

भारत में दो प्रकार के ऐसे संगठन है जो इस प्रकार बढ़ रही हिंसा के लिए जिम्मेदार माने जा सकते है। 1.गॉधीवादी संगठन तथा 2. संघ परिवार, इस्लामिक संगठन तथा वामपंथी संगठन। स्पष्ट सिद्धांत है कि लोकतंत्र में समाज को किसी भी परिस्थिति में बलप्रयोग का न ही कोई अधिकार होता है न ही कोई आवश्यकता। सामाजिक बलप्रयोग एक अपराध माना जाता है। दूसरी ओर किसी भी अपराध के नियंत्रण के लिए राज्य का यह दायित्व है कि वह आवश्यकतानुसार किसी भी सीमा तक बलप्रयोग कर सकता है और उसे यह कार्य करना ही चाहिए। गॉधीवादी संगठनों ने राज्य को न्यूनतम या सीमित बलप्रयोग की शिक्षा दी। इसका परिणाम हुआ कि राज्य कमजोर हुआ तथा अपराध बढ़े। परिणामस्वरुप समाज में अपनी सुरक्षा खुद करने की आवश्यकता महसूस हुई। इस आवश्यकता का लाभ उठाकर सामाजिक हिंसा समर्थक अनेक ऐसे अनेक संगठन हैं जो बलप्रयोग को उचित ठहराते है। ऐसे अनेक संगठनो में से तीन संगठन ऐसे हैं जो अपने को सामाजिक संगठन कहते हैं, तथा साथ–साथ बलप्रयोग का औचित्य भी सिद्ध करते हैं। संघ परिवार, इस्लामिक संगठन तथा साम्यवाद ऐसे संगठनों में प्रमुख है। वैसे तो सिख संगठन भी ऐसे संगठनों में शामिल किया जा सकता है किन्तु उसका प्रभाव पंजाब तक सीमित होने के कारण उसे राष्ट्रव्यापी प्रभाव डालने वाले संगठनों के साथ नहीं जोड़ा जा सकता। ये तीनों ही संगठन अपने सभी कार्यकर्ताओं को बलप्रयोग की शिक्षा भी देते है तथा अनुमति भी। और यदि इन तीनों संगठनों के लोग कहीं आपस में टकरा जाये तो बलप्रयोग निश्चित हो जाता है, चाहे उसका दुष्परिणाम कुछ भी क्यों न हो। तीनों का ही एक सिद्धांत बन जाता है कि जो मजबूत होगा वह जीतेगा, जो संगठित होगा वह मजबूत होगा तथा जो पहले आक्रमण करेगा वह जीतेगा। बलप्रयोग का औचित्य सीखते–सीखते कुछ लोगों का वैसा संस्कार बन जाता हैं। विशेषकर नई पीढी में तो वह संस्कार बचपन में ही घुलमिल जाता है। यही कारण है कि इन संगठनों के युवा सदस्य अधिक से अधिक आक्रामक होते जा रहे हैं। अभी हमने जे.एन.यू. प्रकरण देखा जिसमें साम्यवाद अपने नग्न रुप में सामने दिखा। इसके पूर्व हमने उत्तर प्रदेश में दादरी देखा जहॉ हमें संघ परिवार के ऐसे ही प्रचार का पूरा–पूरा प्रभाव दिखा। गुजरात जैसे शांत प्रदेश में पटेल जैसे शांतिप्रिय लोगों को हार्दिक पटेल नामक एक छोकरे ने इतना उद्वेलित कर दिया कि सारे देश के लिए चिंता का विषय बन गया। अभी–अभी हरियाणा में जाटों ने भी जैसा उपद्रव किया वह भी कोई मामूली घटना नहीं कहीं जा सकती। किसी कन्या या महिला द्वारा किसी मनचले के समक्ष समर्पण से इन्कार करना भी हत्या के रुप में बदलता जा रहा है। मैं मानता हूॅ कि मानव स्वभाव तापवृद्धि में पूरी दुनियां में, विशेषकर भारत में, साम्यवादियों का सर्वाधिक योगदान रहा है, तथा दूसरा नम्बर मुस्लिम संगठनों का रहा है। किन्तु आज से 70 वर्ष पूर्व गॉधी हत्या में जिस वातावरण का प्रत्यक्ष योगदान था वह वातावरण तो संघ परिवार द्वारा ही निर्मित था, तथा हम यह भी कह सकते है कि वह किसी क्रिया की प्रतिक्रिया स्वरुप नहीं था। इसलिए यह कहना बहुत कठिन है कि कौन वातावरण को हिंसा की ओर झुकाने में पहल कर रहा है। यद्यपि गॉधी हत्या के बाद अब तक पहल करने का नेतृत्व वामपंथ और मुस्लिम संगठनों ने ही उठाया हुआ है।

जब आप सामान्य परिस्थिति में यह तर्क देते है कि गलत बात बर्दाश्त नहीं करनी चाहिए तथा गलत करने वाले के विरुद्ध बलपूर्वक प्रतिकार करना एक सामाजिक कार्य है, तब आप भविष्य में ऐसे तथाकथित सामाजिक कार्य की सीमाये टूटने को कैसे रोक सकते हैं। आज देश भर में ऐसे लोगों की बाढ़ आई हुई है जो महिलाओं को छेड़छाड़ के विरुद्ध हिंसक प्रतिकार के लिए प्रोत्साहित कर रही हैं। ऐसे लोगों में पुलिस विभाग तक के लोग शामिल हैं। राजनेता का तो कोई प्रश्न ही नहीं है। इस प्रकार के प्रोत्साहन के दुष्परिणम भी होंगे ही। कब कौन किसका सदुपयोग करेगा और कौन दुरुपयोग यह नहीं कहॉ जा सकता। मुझे तो आश्चर्य होता है कि एक स्थापित व्यवस्था के लोग अपने नागरिको को स्वयं तत्काल बदला लेने को प्रोत्साहित करें, यह कैसे उचित हो सकता है? लेकिन भारत में ऐसा अनुचित प्रोत्साहन भी उचित बताकर किया जा रहा है। पुलिस विभाग का तो यह हाल हो गया है कि पुलिस विभाग के लोगों को मारने पीटने अपमानित करने को एक बहादुरी का कार्य माना जाने लगा है। मीडिया के लोग अपने कार्य के समय भले ही शराब पीकर नाली में पड़े दिखे किन्तु कोई पुलिस वाला यदि बीमारी की अवस्था में भी शराबी सरीखा दिखता हो तो मीडिया उसे अपमानित करने में आनंद का अनुभव करता है। पुलिस का मनोबल तोड़ने में न्यायपालिका भी पीछे नहीं हैं। एक तरफ तो हम गलत बात का तात्कालिक प्रतिशोध करने की भावना का औचित्य सिद्ध करते हैं तो दूसरी ओर इसके ठीक विपरीत ऐसे कानून हाथ में लेने वाले कार्य में स्वाभाविक बाधा पहुचाने वाले पुलिस वाले का मनोबल तोडने में भी जरा भी पीछे नहीं रहते। यदि ये दोनों कार्य एक साथ होगे तो मानव स्वभाव तापवृद्धि का परिणाम स्वाभाविक है, और इसका दोष समाज का न होकर उन लोगों का है जो अपने संगठित स्वार्थ के लिए ऐसे विचार को प्रोत्साहित करते है। यह तो समाज के एक अच्छे संस्कार का प्रतीक है कि इतने विपरीत प्रयासों के बाद भी अब तक कुछ सीमा तक अहिंसा बची हुई है।

आमतौर पर कहॉ जाता है कि गलत बात बर्दाश्त नही करनी चाहिए। प्रश्न उठता है कि गलत क्या है और सही क्या, इसका निर्णय कौन करेगा? यदि दोनों ही पक्ष अपनी–अपनी बात को ठीक मान रहे हो तब यह विवाद टकराव में बदलेगा ही। सही बात बर्दाश्त करना तो कोई विशेषता नहीं मानी जा सकती। सही बात तो सबको स्वीकार करनी ही चाहिए। किन्तु गलत बात बर्दाश्त करने और न करने के बीच एक सीमा रेखा अवश्य होनी चाहिए। मेरे पूरे परिवार में किसी भी नए सदस्य के सम्मिलित होते ही उसे सामूहिक रुप से बिठाकर यह शिक्षा दी जाती है कि हमारे परिवार के प्रत्येक सदस्य को गलत बात बर्दाश्त करने की आदत डालनी अनिवार्य है। यदि कोई बात गलत है तो आप उसे निर्धारित तरीके से ही सामने ला सकते है, उसके अतिरिक्त किसी अन्य तरीके से नहीं। सीमा तोड़ने की तो कही छूट है ही नहीं। परिणाम हुआ कि जब से यह नियम बना है तब से अब तक के पचास वर्षो में हमारे परिवार के किसी सदस्य का आपस मे या बाहर में कोई ऐसा विवाद नहीं हुआ जिसे हम सीमा टूटना कह सकें।

हमें गम्भीरतापूर्वक सोचना होगा कि क्या हम मानव स्वभाव तापवृद्धि के विस्तार के दोषी लोगों में खुद भी तो शामिल नहीं है। गॉधी जी ने दो बातें एक साथ कही थी 1. अन्याय को बर्दाश्त करना कायरता का प्रतीक है। 2. किसी भी अन्याय के विरुद्ध बलप्रयोग गुण्डागर्दी का प्रतीक है। हम पहली वाली लाईन को तो पकड़कर अपने लोगों को शिक्षा देते है किन्तु दूसरी लाईन को भूल जाते है।

एक प्रश्न और उठता है कि मान लिजिए हम हिन्दू हैं तो वर्तमान वातावरण में जब संगठित मुसलमान और साम्यवाद हिंसा के पक्ष में खुली आवाज उठा रहे हों तो हम संघ परिवार को ऐसी स्थिति में क्या सलाह दें? यह सही है कि हिंसा का प्रतिकार हिंसा से नहीं होना चाहिए। किन्तु यह भी सही है कि हिंसा का प्रतिकार नहीं होना भी बहुत खतरनाक है। आदर्श स्थिति तो यह होगी कि राज्य इस तरह की किसी भी हिंसा को प्रारंभ में ही दबा दे। किन्तु वर्तमान स्थिति में राज्य तो स्वयं ही कंन्फयूज्ड है। वह तो स्वयं आन्दोलनों को पूर्ण छूट देकर उसे हिंसा में बदलने का अवसर देता है। ऐसी स्थिति में यदि संघ परिवार के लोगों को समझा बुझाकर शांत कर दिया जाये तो यह कार्य अच्छा होगा या बुरा, यह विचारणीय है।

इस संबंध में मेरा विचार यह है कि मानव स्वभाव तापवृद्धि के पक्षधर संगठनों से जुड़े लोग आपस में हिंसक टकराव भी करते है तो हमें किसी एक पक्ष को जोर देकर शांत नहीं कराना चाहिए, क्योंकि यह कार्य उस पक्ष के साथ अन्याय हो जायेगा किन्तु यदि किसी ऐसे समूह या व्यक्ति के साथ बलप्रयोग होता है जो किसी हिंसा समर्थक संगठन से नहीं जुड़ा है तब हमें अपनी पूरी शक्ति लगाकर उसकी सुरक्षा करनी चाहिए। यदि हिंसक संगठन आपस में लड़ते है तो वर्तमान स्थिति में यह देश के हित में है और ऐसे कार्य से अपने को निर्लिप्त रखना चाहिए या कमजोर की मदद

करनी चाहिए जिससे कोई पक्ष निर्णायक जीत हासिल न कर सके। 67 वर्षो तक जे.एन.यू. को आदर्श मानने वाले लोगों ने राष्ट्रीय स्तर पर शांतिप्रिय लोगों और विशेषकर हिन्दुओं को दोयम दर्जे का नागरिक बनाकर रखा। अब यदि ऐसे संगठनों के प्रति कुछ अन्याय भी होता हो तो हमें तब तक चुप रहना चाहिए जब–जब कोई सीमा रेखा न टूटती हो, या जब तक सामान्य जनजीवन पर कोई दुष्प्रभाव न पड़ रहा हो। या जब तक 67 वर्षो तक अत्याचार करने वाले संगठनों का या उससे जुड़े लोगों का हदय परिवर्तन न हो गया हो। इन सब बातों के होते हुए भी हिंसा का प्रोत्साहन घातक ही होगा और हमारे ऊपर भी इसका दुष्परिणाम निश्चित है। सबसे अच्छा मार्ग तो यही है कि राज्य हमारी सुरक्षा और न्याय की भूमिका को अपना दायित्व समझना शुरु कर दे और हम यह मान ले कि हमें न्याय मिलेगा तथा हमें किसी अन्याय के विरुद्ध प्रत्यक्ष प्रतिकार की भूमिका में आने की आवश्यकता नहीं है।

भारत की अर्थनीति और आर्थिक बजट

दुनियां में आर्थिक दृष्टि से दो ही प्रणालियॉ प्रचलित रही हैं–1 पूॅजीवाद 2 साम्यवाद। इस्लाम की पहचान धार्मिक आधार पर है, आर्थिक पर नहीं। भारत लम्बे समय से गुलाम रहने के कारण अपनी कोई आर्थिक पहचान नहीं बना सका। पश्चिम के अधिकांश देश पूॅजीवाद के समर्थक हैं तो वामपंथी अधिकांश देश साम्यवादी अर्थव्यवस्था के। यह अलग बात है कि पिछले कुछ वर्षो से साम्यवादी देश भी धीरे–धीरे पूॅजीवाद की तरफ सरक रहे है।

पश्चिम के देश अन्य देशों का शोषण करके अपनी प्रगति करते हैं। वे उन्नत तकनीक का लाभ उठाकर दुनियां के देशों में अपना सामान निर्यात करते हैं। उस निर्यात से प्राप्त लाभ से वे विकास करते है। पश्चिम के अधिकांश देश श्रम अभाव देश हैं तथा श्रम बहुल देशों से श्रम आयात करना उनकी मजबूरी है। दूसरी ओर साम्यवादी देश मनुष्य को अपनी राष्ट्रीय सम्पत्ति समझते है, विश्व व्यवस्था के स्वतंत्र सदस्य नहीं। साथ ही वे अपना श्रम बाहर नहीं जाने देना चाहते। यही कारण है कि वे प्रशानिक दृष्टि से कड़े प्रतिबंध लगाकर श्रम को अपने पास रोक कर रखते है। साथ ही उनकी मजबूरी है कि वे दुनियां में अपना सामान निर्यात करने के लिए श्रम को सस्ता भी रखें। यदि साम्यवादी देशों में श्रम महंगा हो जायेगा तो उनका निर्यात प्रभावित होगा और यदि कड़े प्रशासन द्वारा श्रम को रोक कर नहीं रखा गया तो उनका श्रम दूसरे देशों में चला जायेगा। इस तरह पूॅजीवादी अर्थव्यवस्था वाह्य शोषण पर टिकी हुई है, तो साम्यवादी व्यवस्था आंतरिक शोषण पर । क्योकि साम्यवाद मनुष्य को एक प्राकृतिक प्राणी न मानकर राष्ट्रीय सम्पत्ति मानता है। इसी तरह पश्चिम के पूॅजीवादी देश बुद्धि को अपने विकास का महत्वपूर्ण हथियार मानते है, तो वामपंथी देश श्रम को।

भारत मिश्रित अर्थव्यवस्था वाला देश है, जहॉ श्रम की बहुलता है, जहॉ लोकतंत्र है, जहॉ मानव संसाधन विकास मंत्रालय है। इसका अर्थ हुआ कि भारत मानव को संसाधन मानता है, राष्ट्रीय सम्पत्ति नहीं। भारत सन् 1991 तक वामपंथी अर्थव्यवस्था के पीछे–पीछे चला। सन् 1991 के बाद भारत पूॅजीवाद की तरफ सरक कर मिश्रित अर्थव्यवस्था का देश बन गया। नरेन्द्र मोदी के आने के बाद भारत पूरी तरह पूॅजीवाद के साथ हो गया। अब भारत दोनों प्रकार की विचारधाराओं से आर्थिक आधार पर प्रतिस्पर्धा कर रहा है। परिणाम हुआ कि पश्चिम के पूॅजीवादी देश भारत की तेज गति पर लगाम लगाने के लिए कई हथकंडे अपना रहे हैं। भारत में ये लोग पर्यावरण और मानवाधिकार के नाम पर अपने एजेंट खड़े करके विकास की गति को कमजोर करते रहते हैं। दूसरी ओर चीन भी लगातार प्रयत्न करता है कि भारत में श्रम मूल्य बिल्कुल न बढ़े क्योंकि यदि भारत में श्रम मूल्य बढ़ेगा तो चीन बिल्कुल सटा होने के कारण वहॉ के श्रमजीवियों में असंतोष बढ़ेगा। यही कारण है कि भारत के साम्यवादी लगातार प्रयास करते है कि भारत में कृत्रिम ऊर्जा बहुत सस्ती रहे, और वह श्रम मूल्य बिल्कुल न बढ़ने दे।

भारत में भी पूरी दुनियां की तरह प्रतिवर्ष आर्थिक बजट बनाया जाता हैं। बजट का बहुत महत्व होता है क्योंकि आर्थिक बजट ही श्रम को सस्ता रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता हैं, तथा लोकतंत्र होने के कारण श्रम को धोखे में रखना भी आवश्यक है। भारत एक श्रम बहुल देश है, और भारत का बहुमत श्रमजीवी है। यही कारण है कि भारत पूरा प्रयत्न करता है कि श्रम और बुद्धि के बीच अंतर बढ़ता चला जाये। घाटे की अर्थव्यवस्था पर चलना आवश्यक है, गरीब ग्रामीण श्रमजीवी के उत्पादन और उपभोग की सभी वस्तुओं पर अधिक से अधिक कर लगाकर शिक्षा पर खर्च करना भी आवश्यक है। ऐसा बजट ही श्रम को धोखा भी दे सकता है तथा उसकी मूल्यवृद्धि भी रोक कर रख सकता है।

मैं जानता हूॅ कि वर्तमान परिस्थितियों में तत्काल आदर्श बजट नहीं रखा जा सकता किन्तु इस वर्ष उस दिशा में चलने की शुरुवात तो हो सकती है। आदर्श बजट में पॉच लक्ष्य शामिल होना चाहिए–1. अकेन्द्रीयकरण 2. अपराध नियंत्रण 3. आर्थिक असमानता में कमी 4. श्रम की मांग और मूल्यवृद्धि 5. समान नागरिक संहिता। अकेन्द्रीयकरण के लिए केन्द्र सरकार को न्याय, सुरक्षा, विदेश जैसे विभाग अपने पास रखकर शेष सम्पूर्ण आर्थिक राजनैतिक व्यवस्था तथा पूर्ण स्वायत्तता परिवार, गॉव, जिला, प्रदेश और केन्द्र सभा को दे देनी चाहिए। केन्द्र सभा का अर्थ है सेना, पुलिस, विदेश न्याय को छोड़कर अन्य सभी विभाग जो नीचे की इकाइयॉ उन्हें सौंपे।

सरकारों का बजट दो प्रकार से बनता है–1. सब लोगों से टैक्स लिया जाये तथा गरीबों को छूट दी जाये। 2. अमीरों से टैक्स लिया जाये तथा सबको छूट दी जाये। विशेष परिस्थिति में ही अमीरों से टैक्स लेकर गरीबों को छूट दी जाती है किन्तु सामान्यतया ऐसा नहीं होता। आदर्श अर्थव्यवस्था यह है कि सभी प्रकार के उपयोग की प्राथमिकता के आधार पर सूची बनाकर नीचे से तब तक कर लगाया

जाये जब तक सरकार का बजट पूरा न हो जाये। दूसरी ओर यदि बजट बनाने वालो पर श्रमजीवियों के विरुद्ध बुद्धिजीवियों पूँजीपतियों का अधिक प्रभाव हो तो बजट बनाने में दो प्रकार की चालाकी होती हैं। 1. जो वस्तु गरीब ग्रामीण, श्रमजीवी के अधिक उपयोग की हो उन पर अप्रत्यक्ष कर लगाकर उन्हें प्रत्यक्ष सब्सिडी देना। 2. जो वस्तु सम्पन्न शहरी बुद्धिजीवी अधिक उपयोग करते हो उन पर प्रत्यक्ष कर लगाकर अप्रत्यक्ष सब्सिडी देना। रोटी, कपड़ा, मकान, दवा ऊपर से क्रम में आते है तथा शिक्षा, स्वास्थ्य, आवागमन आदि उसके बाद। भारत की राजनैतिक व्यवस्था टैक्स और सब्सिडी के मामले में भी दूसरे प्रकार का उपयोग करती हैं। सब जानते है कि रोटी, कपड़ा, मकान, दवा आदि आम उपभोक्ता वस्तुएँ हैं तथा इनका गरीब, ग्रामीण, श्रमजीवी अधिक उपयोग करते है। दूसरी ओर कृत्रिम ऊर्जा गरीब, ग्रामीण, श्रमजीवी कम उपयोग करते है, अमीर, शहरी, बुद्धिजीवी लोग अधिक। सरकार रोटी, कपड़ा, मकान, दवा जैसी वस्तुओं पर अप्रत्यक्ष कर लगाकर गरीबों को प्रत्यक्ष छूट देती है। दूसरी ओर कृत्रिम ऊर्जा पर कम कर लगाकर शहरी, अमीर, बुद्धिजीवी लोगों को सब प्रकार की अप्रत्यक्ष छूट देती है। साथ ही सरकारें अपने बजट में आवागमन को भी सस्ता करने की भरसक कोशिश करती हैं जबकि प्राथमिकता के क्रम में आवागमन रोटी, कपड़ा, मकान, दवा के बाद ही आता है। हम अपने बजट में इस स्थिति को बिल्कुल पलट देंगे।

वर्तमान समय में भारत का वार्षिक बजट केन्द्र सरकार तथा प्रदेश सरकारों का मिलाकर चालीस लाख करोड़ का हैं। मैं इसे बढ़ाकर पचास लाख करोड़ करना चाहता हूँ। इसकी आय के लिए मैं दो प्रकार के टैक्स प्रस्तावित करता हूँ–1. सम्पूर्ण व्यक्तिगत सम्पत्ति पर अधिकतम दो प्रतिशत वार्षिक कर 2. कृत्रिम ऊर्जा के सभी संसाधनों का मूल्य ढाई गुना करना। मेरा अनुमान है कि सम्पत्ति कर से करीब पच्चीस लाख करोड़ तथा कृत्रिम ऊर्जा मूल्यवृद्धि से भी पच्चीस लाख करोड़ प्राप्त होकर वार्षिक बजट पूरा हो जायेगा। अन्य किसी प्रकार का कोई टैक्स नहीं लगाना पड़ेगा। बल्कि वर्तमान में जारी केन्द्र और प्रदेश स्तर के सभी प्रकार के कर समाप्त कर दिये जायेंगे। वर्तमान में सेना, पुलिस, न्याय पर चार लाख करोड़ का खर्च होता है, इसे दस लाख करोड़ तक बढ़ाया जायेगा। पुराना कर्ज और ब्याज चुकाने में चार लाख करोड़ खर्च होता है इसे बढ़ाकर छः लाख करोड़ कर दिया जायेगा। इक्तीस लाख करोड़ रुपये में बीस हजार रुपये प्रति व्यक्ति प्रतिमाह के आधार पर जीवन भत्ता के रुप में परिवारों को उनकी सदस्य संख्या के आधार पर दे दिया जायेगा। जिसमें करीब इक्तीस लाख करोड़ रुपया खर्च होगा। शेष तीन लाख करोड़ बचेगा, जो विशेष परिस्थिति के लिए रहेगा।

इस तरह के बजट से अर्थव्यवस्था लगभग अकेन्द्रित हो जायेगी। सुरक्षा और न्याय भी निश्चित हो जायेगा, श्रम मूल्य बढेगा तथा श्रम बुद्धि और धन के बीच असमानता अपने आप कम हो जायेगी। प्रत्येक व्यक्ति को समानता के आधार पर टैक्स तथा सुविधा मिलने से समान नागरिक संहिता का भी काम हो जायेगा। शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण, वैज्ञानिक शोध आदि विभाग या तो अपनी व्यवस्था स्वयं करेंगे अथवा सभाएँ टैक्स लगाकर या अन्य माध्यमों से पूरा करेंगी । क्योंकि इक्तीस लाख करोड़ केन्द्र सरकार नीचे वालों को दो हजार रुपया प्रतिव्यक्ति प्रतिमाह के रुप में दे रही है।

मैं समझता हूँ कि कृत्रिम ऊर्जा मूल्यवृद्धि से निर्यात प्रभावित हो सकता है। किन्तु हम विदेशी प्रतिस्पर्धा के आधार पर निर्यात मूल्यों में अतिरिक्त छूट देकर उसे संतुलित कर सकते है। कृत्रिम ऊर्जा मूल्यवृद्धि से भारत का श्रम भी उत्पादन में लगेगा तथा उत्पादन में वृद्धि होगी। विशेष लाभ ये होगा कि प्रतिवर्ष भारत में दस प्रतिशत विदेशी तेल का आयात घटता जायेगा तथा पॉच सात वर्षो में पूरी तरह समाप्त हो जायेगा। उसकी जगह बिजली सौर ऊर्जा आदि काम में आने लग जायेंगे। इस तरह मैं समझता हूँ कि भारत का एक नया आर्थिक ढॉचा बनाया जा सकता है जो भारत को आंतरिक न्याय तथा विदेशों से प्रतिस्पर्धा में भी सहायक होगा।

रेल बजट के संबंध में मेरा सुझाव है कि– 1. सब प्रकार का रेल किराया डेढ गुना या दोगुना करके एक अलग फंड बनाया जाये। इस फंड का पूरा पैसा उन क्षेत्रों में नई लाईन बिछाने में लगा दिया जाये, जहॉ आवश्यकता है। 2. प्रत्येक रेल में कुछ डब्बे ऐसे कर दिये जाये जिनमें आवश्यकतानुसार स्लिपर को कभी भी आर.ए.सी. में बदला जा सके। इस तरह वेटिंग पूरी तरह समाप्त किया जा सकता है। अभी एक डब्बे में यदि चौसठ (64) स्लिपर है तो विशेष परिस्थिति में एक डब्बे में चौबिस (24) स्लिपर तथा अस्सी (80) आर.ए.सी. अर्थात् 64 की जगह 104 यात्री सफर कर सकते है। 3. जिन ट्रेनों में सामान्यतया स्लिपर की मांग अधिक होती है उनमें पैसेंन्जर डब्बों की संख्या घटाई जा सकती है जिससे पैसेंन्जर डब्बों के लोग पैसेंन्जर गाड़ियों में सफर करने की आदत डाल लें।

यदि कोई प्रश्न होगा तो उस पर चर्चा होगी।

केरल मंदिर दुर्घटना और राजनेताओं का नाटक

एक सर्वमान्य सिद्धांत के अनुसार सुरक्षा और न्याय राज्य का दायित्व होता है तथा अन्य जनकल्याण के कार्य उसका कर्तव्य। सुरक्षा और न्याय तंत्र के लिए बाध्यकारी होता है जबकि जनकल्याणकारी कार्य उसके स्वैच्छिक कर्तव्य। पश्चिम के देशों में सुरक्षा और न्याय की आवश्यकता सीमा के अंदर थी इसलिए उन देशों ने जनकल्याणकारी कार्यो को आंशिक रुप से अपने दायित्वों के साथ जोड़ लिया। किन्तु इसके ठीक विपरीत दक्षिण एशिया के देशों में, जिनमें भारत भी शामिल है, सुरक्षा और न्याय खतरनाक स्थिति तक संकट में पड़ा हुआ है। ऐसी स्थिति में सुरक्षा और न्याय राज्य का एकमात्र या पहला दायित्व होना चाहिए था। किन्तु भारत सरकार ने पता नहीं क्यों पश्चिम की नकल करते हुए सुरक्षा और न्याय की अपेक्षा जनकल्याणकारी कार्यों को अपने दायित्वों में शामिल कर लिया। मैं नहीं कह सकता कि यह कार्य जानबूझकर किया गया या भूलवश, किन्तु किया गया अवश्य।

केरल के एक शहर के मंदिर में किसी धार्मिक कार्यक्रम के अंतर्गत हो रही आतिशबाजी से आग लग गई। भयंकर दुर्घटना के अतर्गत 110 के करीब लोग झुलसकर मर गये, तथा 3–4 सौ घायल स्थिति में कराह रहे हैं। ऐसी स्थिति में किसी भी मनुष्य का दिल

पसीजना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है और यदि ऐसा न हो तो उसे पत्थर दिल या निर्दयी व्यक्ति ही माना जायेगा। यहॉ तक कि दुनियां भर के राष्ट्राध्यक्षों ने भी इस भयानक दुर्घटना के प्रति अपना शोक व्यक्त किया है। मैं भी ऐसी दुर्घटना से द्रवित हुए बिना नहीं रह सका। जिनके परिवारों के लोग मरे है या घायल हैं, उनकी करुण स्थिति की कल्पना ही की जा सकती है।

इन सब के बाद भी राज्य रुपी संवैधानिक इकाई इतनी स्वतंत्र नहीं है जो अपनी प्राथमिकताएँ व्यक्तिगत भावनाओं के आधार पर बदल सकें। भारत में राज्य एक व्यवस्था है न कि व्यक्ति समूह का शासन। हत्या और मृत्यु में आसमान जमीन का फर्क होता है। हत्या एक अपराध है। इसका अर्थ हुआ कि हत्याओं को रोकना राज्य का दायित्व है किन्तु मृत्यु चाहे किसी भी कारण से हो, कितनी भी वीभत्स हो, वह दुर्घटना हो सकती है किन्तु अपराध नहीं। इसका अर्थ हुआ कि इसमें सहायता करना राज्य का स्वैच्छिक कर्तव्य मात्र हो सकता है, दायित्व नहीं। यदि राज्य हत्या और दुर्घटनामृत्यु के बीच दुर्घटना को ज्यादा महत्व देता है तो कहीं न कहीं राज्य अपने दायित्व से पीछे हट रहा है अर्थात् राज्य गलत कर रहा है।

मैंने पिछले 2–3 दिनों में देखा कि केरल मंदिर की दुर्घटना में राजनेताओं के बीच नाटक करने की होड़ मची हुई है। ऐसी प्रतिस्पर्धा जैसी किसी हत्या के मामले में कभी नहीं दिखती। नरेन्द्र मोदी, अमित शाह, राहुल गॉधी, ए.के.एन्टनी आदि नेता तत्काल घटना स्थल पर पहुॅच गये। घटना स्थल पर पहुचने में घायलों की सहायता का उद्देश्य न के बराबर था और सहानुभूति या सहायता करने का नाटक करना मुख्य। ऐसा लगा कि जैसे हत्या से प्रभावित व्यक्ति सिर्फ व्यक्ति होता है तथा दुर्घटना से प्रभावित व्यक्ति मतदाता होता है। इसका अर्थ हुआ कि मतदाताओं की संख्या जहॉ अधिक होगी तथा उस घटना के समय किये गये नाटक का प्रभाव अन्य मतदाताओं पर जितना अधिक होगा नेता उसी को अधिक महत्व देगा, उसी को अधिक सहायता भी देगा जबकि हत्या या अपराध के मामले में सहायता या सहानुभूति सिर्फ औपचारिक या मामूली होगी। हमारे छत्तीसगढ़ में राज्य संरक्षित हाथियों या बाघों ने कई लोगों की हत्या कर दी। यदि दस लोग ऐसी हत्या के शिकार हुये तो उन्हें आर्थिक सहायता में कुल मिलाकर 20–25 लाख रुपये प्राप्त हुये। मैं देखता हूॅ कि यदि डकैत या अपराधी दस निर्दोष लोगों की आपराधिक हत्या कर दें तो उन्हें बड़ी मुश्किल से 20–25 लाख रुपया मुवाजा मिलेगा। ऐसे लोगों के आंसू पोंछने कोई विधायक या पटवारी भी नहीं जायेगा क्योंकि यह तो केवल पुलिस का रुटिन वर्क है। किन्तु यदि दस लोग किसी दुर्घटना में या गाड़ी एक्सीडेंट में सामूहिक रुप से मर जायें तो प्रशासन के मुख्यमंत्री तक उसके परिवार में आंसू पोंछने अवश्य आयेंगे और उन्हें दस लोगों की आर्थिक सहायता के रुप में एक करोड़ रुपया भी दे सकते है। स्पष्ट है कि हत्या और मृत्यु में बहुत अंतर है। किन्तु हमारे देश के नेता इस अंतर को जब चाहे तब विपरीत रुप से परिभाषित कर सकते है। मुख्य रुप से ऐसा तब होता है जब मीडिया ऐसी दुर्घटना को बढ़ा चढ़ाकर हाथ में ले लें।

मैंने 2–3 दिनों में हर चैनल के मीडिया कर्मी को अनेक प्रकार के प्रश्न पूछते देखा। अनेक ने तो इस घटना को हत्या तक प्रचारित करने का प्रयास किया। हो सकता है यही चैनल इसे नरसंहार भी कहना शुरु कर दे। चैनल वाले प्रश्न बहुत कर रहे है किन्तु इस बात का उत्तर नहीं दे रहे कि घटना के ठीक पूर्व उनके प्रतिनिधि इस विषय में क्या कर रहे थे। ऐसी घटनाएँ पहले भी घट चुकी है और राज्य शासन ने इससे कोई सबक नहीं लिया। यह सच है किन्तु यह भी सच है कि उस मंदिर में इस दुर्घटना के पहले भी प्रतिवर्ष इसी तरह का खतरनाक आयोजन होता रहा है, जिसको रोकने में मीडिया ने कभी कोई पहल नहीं की। मैं मानता हूॅ कि किसी भी व्यक्ति को किसी भी मामले में दया करने का व्यक्तिगत रुप से पूरा अधिकार है किन्तु किसी भी व्यक्ति को किसी संवैधानिक व्यवस्था के माध्यम से किसी भी रुप में किसी के साथ विशेष दया करने का अधिकार नहीं है। मैंने देखा कि मोदी जी अथवा राहुल गॉधी इस प्रकार का चेहरा बनाये हुए थे जैसे कि वे बस रोने ही वाले है। किन्तु मैं यह भी जानता हूॅ कि हमारे देश के ये नेता रोज ही किसी न किसी मामले में ऐसा चेहरा बनाये रहते है।

राजनैतिक व्यवस्था से जुड़ी हर इकाई अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिए ऐसी दुर्घटना के मामलों में तत्काल कठोर कार्यवाही करना शुरु कर देती हैं। मीडिया भी तत्काल प्रश्नों की झड़ी लगा देता है। प्रशासनिक अफसर भी तुरंत ही अनेक तरह के नोटिस मंदिर प्रशासन को थमा चुके है। तुरन्त ही सरकार ने भी अनेक तरह की जॉचों का आदेश दे दिया है। ऐसा लगा जैसे इस दुर्घटना के बाद ऐसी दुर्घटनाओं का द्वार बंद ही हो जायेगा। किन्तु मैं आश्वस्त हूॅ कि भविष्य में भी ऐसी कार्यवाही से दुघटनाओं की बाढ़ रुकेगी नहीं। क्योंकि ऐसी दुर्घटनाएँ रोकने का यह कोई उचित मार्ग नहीं है। इसका उचित मार्ग तो यह होता कि वहॉ इक्ट्ठे होने वाले नागरिक स्वयं ऐसे खतरों के प्रति सतर्क रहते और इसके बाद भी कोई वहॉ जाता है तो वहॉ जाने वाले की भी उतनी ही बड़ी गलती है जितनी आयोजक की और सरकार की। जाने वाले को परिवार ने नहीं रोका, स्थानीय समाज ने नहीं रोका, क्योंकि सरकार ने ऐसी घटनाओं को रोकने का सारा दायित्व अपने ऊपर ले लिया है और लोग निश्चिंत है कि सरकार की चुस्त दुरुस्त व्यवस्था के अंतर्गत दुर्घटना होना संभव ही नहीं है। अर्थात् जब कलेक्टर की अनुमति के बिना वहॉ बारुद इक्ट्ठा ही नहीं होगा तो दुर्घटना होगी कैसे। सरकार की कार्यवाही कितनी लुंजपुंज है यह सरकार भी जानती है फिर भी ऐसे मामलों का दायित्व अपने ऊपर ले लेती है और इसके बाद भी दुर्घटना होने पर अपनी जिम्मेदारी स्वीकार करने की अपेक्षा आयोजकों को दण्डित करके अपने को निर्दोष सिद्ध करने का प्रयास करती हैं।

मैं स्पष्ट कर दूॅ कि यदि 10 लोगों की हत्याएँ होती है और 100 लोगों की मृत्यु होती है तो समाज के लिए 100 लोगों की मृत्यु अधिक महत्वपूर्ण है किन्तु प्रशासन के लिए 10 लोगों की हत्या। 100 लोगों की मृत्यु की अपेक्षा 10 लोगों की हत्या अधिक महत्वपूर्ण है। क्योंकि हत्याएँ रोकना राज्य का दायित्व है तथा मृत्यु रोकना स्वैच्छिक कर्तव्य। राज्य सत्ता से जुड़े लोग इस प्रकार का नाटक करके खजाना लुटाकर या नोटिस थमा कर यदि अपने दायित्व से भागने का प्रयास करते है तो यह अच्छी बात नहीं है। मैं चाहता हूॅ कि इस विषय पर समाज में एक सार्थक विचार मंथन होना चाहिए।

प्रश्नोत्तर–

1. दिनेश, ईमेल से

प्रश्नः–ज्ञानतत्व यथानाम तथा गुण है। परन्तु तत्व को ग्रहण करने के लिए बुद्धि तीव्र और सूक्ष्म होना चाहिए। मोदी जी आर.एस.एस. और स्वामी विवेकानंद जी से बहुत प्रभावित हैं, यह जगजाहिर है। हमारे कार्यालय में संघ के अधिकारी/उच्च अधिकारी भी कई बार आये है और उनसे चर्चा भी हुई है। परन्तु कभी भी किसी ने इस बात का जबाब नही दिया कि सब कुछ जानते और समझते हुए भी संघ के लोग अंधविश्वास/पाखण्ड के विरुद्ध आवाज क्यों नहीं उठाते। इतना ही नहीं मूर्ति पूजा जैसी भयंकर बुराई को बढ़ावा देने जैसा अनैतिक कार्य क्यों करते हैं, यह मैं समझ नहीं पा रहा। क्या मोदी जैसे बुद्धिमान व्यक्ति भी ये नहीं जानते कि गंगा की आरती उतारने से किसी का कोई भला नहीं होने वाला। मुनि जी मुझे क्षमा करना मैं यह कहने का दुस्साहस कर रहा हूँ कि ये हिन्दू नाम का जन्तु न केवल कमजोर है अपितु प्रथम श्रेणी का कायर भी है। मैं बहुत बार सोचता हूँ कि जो पुत्र अपनी माँ के सम्मान की तो बात छोड़िए उसकी सुरक्षा भी नहीं कर पा रहा, उसे जीने का भी अधिकार है क्या? यह दुनियां कायर और कमजोरों के लिए बिल्कुल नहीं है। दुनियां की तो बात छोड़िये, घोड़ा भी कमजोर सवार को अपने ऊपर सवारी नहीं करने देता, शायद आप सहमत होंगे। मैं ये जानना चाहता हूँ कि आप इन समस्याओं को कैसे देखते है और आपकी दृष्टि में इनका समाधान क्या है?

उत्तरः–आपके पत्र से ऐसा महसूस होता है कि आप एक सामाजिक चिंतक है, जबकि नरेन्द्र मोदी जी राजनैतिक। दोनों के मार्ग अलग–अलग होते है। राजनेता को अनेक प्रकार के नाटक करने पड़ते है, जो किसी सामाजिक विचारक के लिए उचित नहीं। यह राजनेता की मजबूरी होती है जिसे महसूस करने की आवश्यकता है। संघ परिवार भी एक राजनैतिक संगठन है जो अप्रत्यक्ष रुप से राजनीति को संचालित करता है। संघ की भी ऐसी ही मजबूरी है कि वह राजनैतिक परिणामों की कल्पना करके ही किसी कार्य में आगे बढ़ता है।

कार्य तीन प्रकार के होते है 1. सामाजिक 2. असामाजिक 3. समाज विरोधी। सामाजिक कार्य करना हम सबका कर्तव्य भी होता है तथा अधिकार भी। असामाजिक कार्य में हमारा अधिकार तो होता है किन्तु कर्तव्य नहीं। समाज विरोधी कार्य करना न तो हमारा कर्तव्य होता है न ही अधिकार। सामाजिक कार्यो को प्रोत्साहित करना तथा असामाजिक कार्यो को निरुत्साहित करना समाज का दायित्व होता है राज्य का नहीं। किन्तु समाज विरोधी कार्यो को रोकना राज्य का दायित्व होता है। अंधविश्वास का फैलना असामाजिक कार्य है, समाज विरोधी नहीं। मूर्ति पूजा भी असामाजिक कार्य है समाज विरोधी नहीं। यदि समाज में अंधविश्वास और मूर्तिपूजा प्रचलित है तो यह हमारी आपकी असफलता और कमजोरी का प्रतीक हैं, सरकार का नहीं। किन्तु यदि अपराध अर्थात् समाज विरोधी कार्य लगातार बढ़ रहे है तो यह राज्य अर्थात् नरेन्द्र मोदी तथा अप्रत्यक्ष रुप से संघ की असफलता का प्रतीक हैं। दुर्भाग्य से हम सब अपना कार्य न करके अंधविश्वास सरीखे कामों को रोकने के लिए भी सरकार से उम्मीद करते है, यह गलत है। यदि मोदी जी अधिक वोट की लालच में गंगा आरती करते है तो इसमें गलत क्या है। यदि वे भावनात्मक मान्यता के आधार पर भी गंगा आरती करते है तो इसमें दोष हमारा आपका है जिन्होंने बचपन से उन्हें ऐसे संस्कार दिये। गंगा आरती करना कोई ऐसा कार्य नहीं है जो समाज विरोधी कार्य की श्रेणी में आता है। इसलिए हमें ऐसे कार्यों को ज्यादा तूल नहीं देना चाहिए।

आपने हिन्दुओं को प्रथम श्रेणी का कायर लिखा। मैं मानता हूँ कि हिन्दु कायर हो सकता है किन्तु आक्रामक नहीं। हिन्दु गुलामी सह सकता है किन्तु गुलाम बना नहीं सकता। हिन्दु अत्याचार सह सकता है किन्तु अत्याचार कर नहीं सकता। हिन्दू हिन्दुओं को दूसरे धर्म में तिकड़म करके बलप्रयोग करके लोभ लालच से जाते हुए देख सकता है किन्तु तिकड़म करके बलपूर्वक लोभलालच से किसी अन्य धर्मावलम्बियों को अपनी ओर नहीं ला सकता। हिन्दू नुकसान उठा सकता है मूर्खता कर सकता है किन्तु धूर्तता नही, अपराध नही। मैं नहीं समझता कि अन्य धर्मावलम्बियों की तुलना में हमें हिन्दू होने पर गर्व क्यों नहीं होना चाहिए। मैं मानता हूँ कि यह हमारी कायरता का चिन्ह है जिसे हमें बदलने की आवश्यकता हैं। किन्तु इस बदलाव के लिए अन्य धर्मावलम्बियों के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी जाये यह उचित नहीं। आज तक दुनियां में कहीं ऐसा नहीं हुआ कि कोई कायर कौम कई सौं वर्षो तक गुलाम रहने के बाद भी अपना अस्तित्व बचा ले, किन्तु हिन्दुओं ने अपना अस्तित्व बचाकर दिखाया है। मैं पुनः कह दूँ कि हिन्दुत्व की विचारधारा विचार मंथन से आगे बढ़ती है। शक्ति प्रयोग या धन प्रयोग हिन्दुत्व की विचारधारा नहीं है। स्वतंत्रता के बाद जबसे हिन्दुओं ने विचार मंथन छोड़कर प्रत्यक्ष टकराव का मार्ग पकड़ा तभी से लगातार यह संकट बढ़ता जा रहा है। फिर भी जो लोग इस मार्ग पर चल रहे है उन्हें निरुत्साहित करना ठीक नहीं है क्योंकि वे कुछ तो कर रहे है। फिर भी जो विचार करने की क्षमता रखते है। मेरे जैसे उन लोगों को हिन्दुत्व के मार्ग पर आगे बढ़ता रहना चाहिए।

आपने माँ की सुरक्षा और सम्मान की बात की है। मुझे लगता है कि आपका आशय भारतमाता से है। आज हमारे छोटे से छोटे शहर में गुण्डे और अपराधी इतने प्रबल हो गये कि हम या हमारा परिवार अपने शहर में भी सिर उठाकर चलने की स्थिति में नहीं है। मातृभूमि का अर्थ धरती माता होता है भारतमाता नहीं। धरतीमाता का ही एक छोटा स्वरुप भारत है और भारत का एक और छोटा स्वरुप हमारा शहर। धरतीमाता का उससे भी छोटा स्वरुप हमारा मातृपितृ परिवार है। हम अपने परिवार को सुरक्षित न रखें। अपने–अपने शहर को सुरक्षित न रखे। पूरी धरतीमाता की चिंता न करें। केवल भावनाओं को भड़काकर भारतमाता की चिंता करें। यह संघ परिवार का राजनैतिक उद्देश्य हो सकता है किन्तु मेरे जैसे विचारक या हिन्दू का उद्देश्य नहीं हो सकता। मैं महसूस करता हूँ कि यदि स्वामी दयानंद आज होते तो इस सीमा में बंधे नहीं रहते जो सीमा उन्होंने अपने जीवनकाल तक बनायी थी। देशकाल परिस्थिति अनुसार प्राथमिकताएँ बदलती रहती है यदि स्वामी जी होते तो वे भी इन प्राथमिकताओं को बदलते। और यदि मैं हूँ तो मैं भी देशकाल परिस्थिति

के अनुसार अपनी प्राथमिकताएँ तय करुँगा। परिस्थिति अनुसार मार्ग चयन स्वामी दयानंद जी ने सिखाया है और मैं उसी मार्ग का अनुसरण कर रहा हूँ।

2/1 पी चिदम्बरम पूर्व केन्द्रिय मंत्री, जनसत्ता 6 फरवरी से

विचारः–संसद सर्वोच्च विधायी संस्था है। प्रधानमंत्री देश के कार्यपालिका के प्रमुख है। संसद में दिये गए प्रधानमंत्री के वक्तव्य की निश्चय ही एक पवित्रता और वैधानिक महत्ता होती हैं। 27 फरवरी 2015 को राष्ट्रपति के अभिभाषण के बाद, धन्यवाद प्रस्ताव पर हुई बहस का जबाव देते हुए प्रधानमंत्री ने कहॉ था कि कई बार यह कहा गया है कि हम मनरेगा को खत्म करने जा रहे है या खत्म कर देंगे। आपमें से अधिकतर यह मानते है कि मुझमें भरपूर राजनैतिक समझ है। और यह राजनैतिक समझ मुझे इस बात की इजाजत नहीं देती कि मनरेगा को बंद कर दूँ। मैं ऐसी गलती नहीं कर सकता। क्योंकि मनरेगा आपकी विफलताओं का स्मारक है। आजादी के साठ सालों बाद आपकी वजह से लोगों को गड्डे खोदने पड़ रहे है इसलिए यह आपकी नाकामियों का सबसे बड़ा उदाहरण है और मैं अपनी पूरी ताकत से इस बात को प्रचार करने जा रहा हूँ। मैं दुनियां को बताउँगा कि आप जो गड्डे खोद रहे है वे साठ वर्षो की आपकी गलतियों की ओर इशारा करते है।

क्या यह लक्ष्य को निर्मम राजनीतिक ताना मारता था? या सोच विचार और विश्लेषण के बाद निकाला गया निष्कर्ष था? यह कहना मुश्किल है ग्रामीण रोजगार गारंटी कार्यक्रम के बारे में यह आशंका निराधर नहीं है कि इसे धीरे–धीरे समेट या खत्म कर दिया जाएगा। सरकार ने योजना में कटौती के प्रयास किए। फंड आबंटित करने में देर की गई, काम की मांग को पूरा कर पाना राज्य सरकारों के लिए मुश्किल बनाया गया। इसके ठोस प्रमाण है। पन्द्रह दिनों के भीतर भुगतान किए जाने का आंकड़ा 2013–14 में पचास फीसद था जो गिर कर 2014–15 में 26.85 फीसद रह गया। इस योजना से सृजित होने वाले मानव श्रम दिवसों की संख्या घट गई जिसे निम्नलिखित आंकड़े में देखा जा सकता है।

2012–13: 230 करोड मानव श्रम दिवस

2013–14: 220 करोड

2014–15: 166 करोड

नतीजतन सौ दिन तक काम पाने वाले परिवारों की संख्या 2012–13 में जहॉ इक्यावन लाख से ऊपर थी। 2014–15 में यह घटकर पच्चीस लाख पर आ गई। इस योजना को जिसे मोदी ने हिराकत से गड्डे खोदना करार दिया, दो वर्ष हो गए है। और इस अवसर को उत्साह तथा तामझाम के साथ किसने मनाया? राजग सरकार ने। पूरे मीडिया में सरकार इस योजना का श्रेय लेती दिख रही थी। इस साल सूखे के कारण पैदा हुई विषम स्थिति का मतलब है मनरेगा की मांग में भारी वृद्धि होना। सरकार ने मनरेगा के तहत मिलने वाले काम में सूखा प्रभावित इलाकों में पचास दिनों की बढ़ोतरी की है। ऐसा लगता है कि सरकार की इस योजना की अच्छाई नजर आने लगी है।

मनरेगा ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सहारा देने में अहम भूमिका निभाई है। पहली बात यह है कि मुसीबत के दिनों में इसने राहत दिलाने का महत्वपूर्ण काम किया है। और इस मायने में यह अपने आप चक्र की दिशा बदलने वाली तजबीज है। सूखे के दिनों में मजदूरी की मांग बढ़ जाती है दूसरे यह चयन की पद्धति से काम करती है। लिहाजा लाभार्थियों के चयन में किसी के विवेकाधिकार के अपनी मर्जी चलाने की नाममात्र की गुंजाइश रहती है। तीसरे चूँकि भुगतान सीधे बैक या डाक के खाते में भेजा जाता हैं। दूसरी कल्याणकारी योजनाओं के मुकाबले इस योजना में गड़बड़ी के मौके कम है। चौथे मनरेगा आकास्मिक अनियमित मजदूरों की दर बढ़ाने में सहायक हुआ है ग्रामीण भारत में प्रतिव्यक्ति मजदूरी दस साल तक सालाना बारह फीसद की दर से बढ़ी और यह क्रम 2014–15 तक चला।

अगर व्यापक संदर्भ में देखे तो यह योजना भारत में हो रहे रुपान्तरण का एक महत्वपूर्ण औजार है। लोगों की एक बड़ी तादाद खेती से मैन्युफैक्चरिंग या सेवाक्षेत्र की तरफ जा रही है या जाने को है। बहुत से लोग अन्यत्र अपेक्षया स्थायी काम पाने से पहले एक खास सीजन से मिलने वाले काम के चलते दूरदराज जाते है। इसका अर्थ है कि यह काम गॉव में भी पाया जा सकता है, जिन दिनों शहर में उन्हें काम नहीं होता। इसके अलावा उन करोड़ों मजदूरों के लिए जो गांवों में ही बने रहते है मनरेगा रोजगार का अहम जरिया है खासकर उन दिनों जब खेती में काम मिलने की संभावना बहुत कम होती है।

लेकिन कुछ ऐसे पहलू है जिन्हें लेकर मैं शुरु से सवाल उठाता रहा हूँ। जो काम अमूमन कराए जाते है ये है तालाबों को गहरा कराना या सडकों के किनारे की झाड़ झंखाड़ साफ करना। यह महत्वपूर्ण होगा, पर पंचायत को काम में बड़े दायरें को दृष्टि में रखना चाहिए जिसमें जल संरक्षण नहरों का निर्माण और रखरखाव सूखा निवारण तालाबों का जीणोंद्वार, ग्रामीण क्षेत्रों में सड़को का निर्माण, बाढ़ नियंत्रण वर्षाजल संचयन और पेयजल की उपलब्धता जैसे काम शामिल है। पंचायत को ऐसे निर्माण कार्यो को निश्चित करना चाहिए जिसकी जरुरत गॉव में सबसे ज्यादा हो। मनरेगा खैरात बांटने का कार्यक्रम नहीं है। मनरेगा की मजदूरी के मद में हर साल विशाल धनराशि खर्च होती है। इस योजना के तहत काम कर रहे श्रमिको की संख्या इस समय लगभग दो करोड़ है। हमें इस श्रम शक्ति का इस्तेमाल टिकाउ स्थायी और उपयोगी परिसम्पत्तियों के निर्माण में करना चाहिए।

मनरेगा कभी भी गड्डे खोदना नही था न ही यह नाकामी का स्मारक है। पर मोदी की टिप्पणी को देखते हुए समय आ गया है कि हम योजना को एक ऐसी योजना में बदल दे जो टिकाउ परिसंपतियों का निमार्ण करें और सामाजिक न्याय का स्मारक बने।

2/2 तवलीन सिंह प्रसिद्ध लेखिका। जनसत्ता 6 फरवरी से।

विचार—वाशिंगटन में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 2014 में एक बात कहीं थी जो आज भी मेरी कानों में संगीत की तरह गूंजती है। प्रधानमंत्री अमेरिका की इस राजधानी में उद्योगपतियों को संबोधित कर रहे थे। प्रधानमंत्री का शान से स्वागत किया गया। जिसके बाद उन्होंने हिन्दी में अपना भाषण दिया। उन्होंने निवेशकों को आमंत्रित करने के लिए कई बाते कहीं लेकिन जो बात मेरे दिल को छू गई वह थी कि उनकी नजरों में भारत को गरीब देश होने का कोई कारण नहीं दिखता है। यह बात मुझे इसलिए अच्छी लगी क्योंकि मैं खुद बहुत बार ऐसी बात लिख चुकी हूँ । मेरा मानना है कि भारत के पास हर किस्म का सरमाया है जो देशों को समृद्ध बनाने में काम आता है। अगर आर्थिक नीतियॉ सफल हो। मिसाल के तीर पर हमारे सबसे गरीब राज्यों के पास अकसर प्राकृतिक सुंदरता और प्राचीन इमारतों का ऐसा भंडार है कि टुरिज्म में ही ठीक ढंग से निवेश हुआ होता तो ओडीसा और बिहार जैसे प्रदेश सम्पन्न हो गये होते ।

गुरबत के शिकंजे में जकड़ कर रह गए है इन राज्यों के लोग तो इसलिए कि दिल्ली में तमाम आर्थिक फैसले सेंट्रल प्लानिंग की सोच के तहत किए गए। समाजवादी देशों में इस तरह कर आर्थिक केन्द्रीयकरण अक्सर दिखता है लेकिन सोवियत संघ में सबसे ज्यादा दिखता था और भारत ने सोवियत संघ से प्रेरेणा लेकर अपनी नीतियां बनाई थी। सोवियत संघ खुद टूट गया अपनी गलत आर्थिक नीतियों के कारण। लेकिन भारत की अर्थव्यवस्था में सुधार सिर्फ तब लाए गए जब सन् 1991 में देश कंगाल होने के कगार पर था। स्थिति इतनी बुरी थी कि प्रधानमंत्री नरसिंह राव को लाईसेंस राज समाप्त करना ही पड़ा ।

आर्थिक नीतियों का विकेन्द्रीयकरण भी हुआ और ऐसा होने से कुछ वर्ष भारत के लिए बहुत अच्छे गुजरे। फिर आया सोनिया गॉधी का दौर जिसमें उन्होंने अपनी राष्ट्रीय सलाहकार परिषद् द्वारा फिर से दिल्ली में लेने शुरु किए बड़े—बडे आर्थिक फैसले। उनकी सलाहकार समिति बेचारे मनमोहन सिंह के मंत्रिमंडल से भी ज्यादा शक्तिशाली थी, जिसके दबाव में मनमोहन सिंह सरकार पर थोपी गई मनरेगा जैसी योजनाए धीरे—धीरे देश भर में लागू कर दी गई। उस समय कुछ भाजपा मुख्यमंत्रियों ने एतराज जताया था कि केन्द्र सरकार को ऐसी समाज कल्याण योजनाओं से उनको नुकसान अधिक और लाभ कम होता है क्योंकि उनको अपनी योजनाओं को त्यागना पड़ता है। इन मुख्यमंत्रियों में नरेन्द्र मोदी भी थे। लेकिन अब लगता है कि उनकी सोच बदल गई है।

पिछले सप्ताह वित्तमंत्री ने गर्व से वक्तव्य दिया कि मोदी सरकार के आने के बाद मनरेगा बेहतर हो गया है लेकिन यह शायद भूल गये थे कि प्रधानमंत्री ने खुद इस योजना का मजाक उड़ाया था लोकसभा में। यथार्थ यह है कि मनरेगा के आने के बाद न ग्रामीण रोजगार बढ़ा है और न ही गरीबी कम हुई है। यथार्थ यह भी है कि इस योजना में जो लाखों करोड़ रुपए निवेश हुए है, अगर वे ग्रामीण स्कूल अस्पताल और सड़को पर खर्च हुए होते तो आज शायद ग्रामीण भारत की शक्ल बदल गई होती। मनरेगा बेरोजगारी भत्ता बन कर रह गया है, रोजगार का साधन नहीं। अगर इस योजना को कायम रखना ही था मोदी सरकार को तो कम से कम इतना तो करते कि इसके द्वारा उन चीजों का निर्माण कराने की कोशिश होती जिनका ग्रामीण क्षेत्रों में सख्त अभाव है। फिलहाल मनरेगा के तहत सिर्फ गड्डे खोदने और मिट्टी डालने का प्रावधान है। पता नहीं मोदी जी ऐसी ना काम योजनाओं को क्यो बंद नहीं कर रहें?

उत्तरः— राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी योजना 10 वर्ष पूर्व मनमोहन सिंह के कार्यकाल में शुरु की गई थी। यह योजना वामपंथियों के दबाव में शुरु हुई थी। मेरे विचार में कांग्रेस के शासनकाल में प्रारंभ की गई अनेक योजनाओं में से यह सर्वश्रेष्ठ योजना थी। इस योजना के परिणाम स्वरुप अविकसित प्रदेशों के ग्रामीण श्रमजीवियों का विकसित क्षेत्रों की ओर पलायान होना रुका। इस योजना में जाति, धर्म का भेद नहीं था। इस योजना में परिवार को एक इकाई माना गया था, जिसमें महिला और पुरुष का भी कोई भेद नहीं था। इस योजना में न्यूनतम श्रममूल्य किसी सिद्धांत पर घोषित न होकर उस समय की परिस्थितियों के अनुसार था। इस योजना के अच्छे परिणाम दिख रहे थे।

कुछ वर्षों के बाद ही सम्पन्न क्षेत्रों में श्रमिको की कमी होने लगी। सम्पन्न क्षेत्रों के राजनेताओं ने षड़यंत्र किया और नरेगा को बंद कराने का दबाव बनाना शुरु किया। किन्तु सोनिया गॉधी और मनमोहन सिंह ने कोई दबाव स्वीकार नहीं किया। दूसरी ओर वामपंथियों को भी ऐसा महसूस हुआ कि यदि यह योजना सफल हो गई तो उनके वामपंथ की सफलता कभी पूरी नहीं हो सकेगी। परिणामस्वरुप दोनों ओर से षड़यंत्र किया गया और सरकार ने दबाव में आकर इस योजना के स्वरुप को बदल दिया। इसका अर्थ हुआ कि अविकसित क्षेत्रों की अपेक्षा विकसित क्षेत्र में नरेगा का न्यूनतम श्रममूल्य अधिक कर दिया गया। इसमें भी कुछ केन्द्र सरकार ने बढ़ाया तो कुछ राज्य सरकारों ने भी अपनी तरफ से बढ़ा दिया और फिर से अविकसित और विकसित क्षेत्रों के मजदूरो के बीच खाई चौड़ी हो गई। इसी बीच सरकार बदल गई और नरेन्द्र मोदी सरकार ने विकसित क्षेत्रों का श्रममूल्य घटाकर अविकसित क्षेत्रों के बराबर करने का प्रयास किया। मेरे विचार से यह प्रयास एक अच्छा कदम है। इस प्रयास से विकसित और अविकसित श्रमजीवियों के श्रममूल्य का अंतर कम होगा। स्वाभाविक है कि सम्पन्न क्षेत्रों के किसान इससे परेशानी अनुभव करेंगे। स्वाभाविक है कि कमजोर क्षेत्रों के मजदूर इससे प्रसन्न होंगे। वैसे तो कुल मिलाकर नरेगा की योजना किसानों के हित के विपरीत ही रही है। किन्तु विकसित क्षेत्रों के किसानों को इससे अधिक परेशानी उठानी पड़ेगी। दस वर्ष पहले जब यह योजना शुरु हुई थी तब न्यूनतम श्रममूल्य 60रु था। आज मुद्रास्फीति करीब ढाई गुना बढ़ी है। तो श्रममूल्य भी लगभग उतना ही बढ़ा है और सरकार का बजट भी करीब उतना ही बढ़ा है।

फिर भी मनरेगा या नरेगा एक अल्पकालिक राहत कार्य है समाधान नही। समाधान तो श्रम की मांग और मूल्य बढना ही है। यदि सरसठ वर्षो बाद भी भारत मे एक बडे समूह को राहत देनी पडे तो यह नाकामी का स्मारक ही कहा जा सकता है, सफलता का नही। फिर भी समाधान के पूर्व तत्काल राहत को बंद कर देना अच्छी बात नही। इसलिये मै समाधान होते तक के लिये नरेगा का प्रबल पक्षधर हूँ। नरेन्द्र मोदी ने प्रारंभ में नरेगा के विरुद्ध विचार व्यक्त किया था। यह विचार उनके किन अनुभवों पर आधारित था यह वे जाने किन्तु यह सही है कि उनकी धारणा अच्छी नहीं थी। दो वर्ष के अनुभवो के बाद उनकी धारणा बदली है यह बात भी सही है। उन्होंने कांग्रेस शासनकाल की योजना में यह बात जोड़ी है कि इस योजना के अन्तर्गत गॉवों में कुएं बनाने का काम किया जायेगा। उनकी यह सोच भी ठीक ही है। मैं नहीं कह सकता कि यह संशोधन मोदी जी का अपना विचार है या चिदम्बरम जी और तवलीन सिंह जी के विचारों के आधार पर किन्तु चाहे किसी के आधार पर दो संशोधन हुए हो लेकिन हुए है ठीक दिशा में।

तवलीन जी ने जो विचार व्यक्त किये है वे इसलिए ठीक नहीं है कि उनके अनुभव हम आप जैसे विकसित क्षेत्रों के किसानों की दुर्दशा के आधार पर बने है जबकि मेरे अनुभव छत्तीसगढ़ के मजदूरों की दुर्दशा के आधार पर बने है। साथ ही मैं चिदम्बरम जी से इसलिए सहमत नहीं हूँ कि उनकी सोच विपक्ष के एक स्थापित नेता के रुप में है। यदि इन सब टिप्पणियों को किनारे रख दिया जाये तब भी हमें गरीब, ग्रामीण, श्रमजीवी विशेषकर अविकसित क्षेत्रों का ध्यान तो रखना ही चाहिए और इस आधार पर नरेगा को वर्तमान स्थिति में चालू रखना एक अच्छा कदम है।

3 श्री तुफैल चतुर्वेदी, नोएडा, डायलॉग इण्डिया अप्रैल 2016 से

विचार—हाल ही में भारत के प्रधानमंत्री माननीय नरेन्द्र मोदी जी ने अपनी ब्रिटेन यात्रा के दौरान बयान दिया कि इस्लाम में यदि सूफी मत प्रभावी स्वर होता, तो इतनी हत्याए न होती। संसार में इस्लाम की केन्द्रीय अवधारणा तौहीद को मानने वाले इतने नरसंहार न करते।

सूफीवाद के विषय में ऐसी ही धारणा रखने वाले भारत में अन्य अनेक लोग भी हैं। इस्लामी इतिहास और इस्लामी वांग्मय के एक विद्यार्थी होने के नाते, यह मेरा दायित्व है कि मैं इस्लाम और सूफीवाद पर इतिहास के आलोक में बात करुँ, और पाठकों को बताऊँ कि वास्तव में मोदी ने अनजाने में ही एक भीषण गलती कर दी। आइये हम पहले जाने कि भारत के संदर्भ में सूफी मत क्या हैं? सूफीमत यानी भारत के अपने में ही डूबे रहने वाले बुद्धिजीवी वर्ग, अपने चश्में से दुनियां को देखने एवं उसके बारे में राय बनाने वाले विशिष्ट वर्ग के लिये हिन्दू मुस्लिम एकता का एक और गंगा जमुनी काम भर है। इन सेकुलर बुद्धिजीवियों की इस गंगा जमुनी तहजीब का प्रकटन पाकिस्तानी गजगामिनी कुव्वाला आबिदा परवीन की कव्वाली का आनंद लेने, उसके कार्यक्रमों में जा कर ताली बजा–बजा कर सर धुनने धुनवाने वडाली बंधुओं के अबूझ अजीब से गानों में रस लेने, अमीर खुसरो बुल्ले शाह जैसे शायरों कवियों की निहायत फटीचर कविता को अद्भुत मानने इत्यादि में होता है।

धर्मबन्धुओं! सूफी मत इस्लाम फैलाने का केवल एक उपकरण मात्र है और सूफियों की हर बात का अर्थ प्रकारांतर में इस्लाम में दीक्षित हो जाना है। भारत में धर्मान्तरण के सबसे प्रमुख उपकरण सूफी ही रहे है। अफगानिस्तान से शुरु करके मुल्तान, पाकिस्तानी पंजाब, भारतीय पंजाब ,हरियाणा, दिल्ली ,पश्चिम उत्तर प्रदेश, पूर्वी उ0 प्र0, बिहार ,पश्चिमी बंगाल बांग्लादेश से इंडोनेशिया से आगे जाता हुआ पूरा गलियारा इन्हीं सूफियों का शिकार हुआ है। उ0प्र0 के बौद्ध राजपथ वाले सारे जिलों से बुद्ध मत गायब हो गया। यहॉ के बौद्ध इन्हीं सूफियों के शिकार हुए हैं। बुल्ले शाह मुईनुद्दीन निजामुद्दीन बख्तियार काकी जैसे कुछ प्रमुख के अलावा भी सारे भारत में इनकी दरगॉहें बिखरी पडी है। ये सब इस्लाम की लडाई लडने आये सैनिक थे। जिन्हें प्रतापी हिन्दू राजाओं ने काट डाला, वो शहीद कहला कर पूजे जा रहे हैं, बाकी पीर बाबा गाजी बाबा कहला रहे है। इनकी किताबें पढिये, सभी में इनके काफिरों या जादूगरों से संघर्ष की चतुराई से लिखी गयी कथाएँ हैं। अजमेर के मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह या दिल्ली के निजामुद्दीन और अमीर खुसरों की कब्रों पर जा कर देखिये, वहॉ आने वाले नब्बे प्रतिशत हिन्दू मिलते है, यानी आज भी न्यूनाधिक हिन्दू लचीला तो होता ही है, वह सामान्यतः दूसरे पंथों का अपमान भी नहीं करता और भोला तो इतना होता है कि पश्चिम से आए पंथों द्वारा रचे गए चतुराईपूर्ण षडयंत्रों को समझ ही नहीं पाता। वर्तमान भारत से इतर वृहत्तर भारत का सिल्क रुट कहलाने वाला क्षेत्र इन्हीं कुचक्रों के कारण बौद्ध मत की जगह इस्लामी बना है। इसी का परिणाम आज चीन का सिंक्यांग एवं रुस से अलग हुए इस्लामी देशों में दिखाई देता है। सब जगह खंडित बुद्ध मूर्तिया,ध्वस्त बौद्ध विहार मिलते है।

एक तरफ प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी लंदन में सूफियों के गुणगान करते हैं, तो दूसरी तरफ भाजपा की सरकारें करोडों रुपये इन सूफी दरगाहों पर खर्च करती हैं। आज भी इन सूफी दरगाहों पर जाने वाले लोग मुसलमान नहीं, बल्कि हिन्दू हैं। दुःख की बात यह है कि इन तथाकथित जिहादी सूफियों ने करोडों हिन्दुओं को तलवार के जोर से मुसलमान बनाया और उनके उपासना स्थलों को जबरन मस्जिदों और दरगाहों में बदल डाला। इस्लाम के इन छिपे जिहादियों के खतरनाक घिनौने चेहरों का कई विद्वानों ने पर्दाफाश करने का प्रयास बारम्बार किया हैं, ताकि बुद्धिहीन हिन्दू उनके असली चेहरों को पहचान सकें और उनके दरगाहों पर नजराने देने का सिलसिला फौरन बंद कर दें। आजादी के बाद इस्लाम के खूंखार प्रचारको को सूफी करार देकर उनको महिमामंडित करने का अभियान चल रहा है। इस दुष्प्रचार का शिकार प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी भी हो गए।

अजमेर के हजरत गरीब नवाज मोईनुद्दीन चिश्ती के बारे में कुछ वर्ष पूर्व लाहौर के एक सामाचार पत्र कोहिस्तान में कुछ फारसी पत्र प्रकाशित हुए थे, जो कि उन्हो।ने शाहबुद्दीन गौरी को लिखे थे। इन पत्रों में मोईनुद्दीन चिश्ती ने अजमेर के किले तारागढ़ को कैसे जीता जाये इसके बारे में गौरी को कई सुझाव दिए थे। इनकी चार पत्नियॉ थी जिसमें से एक पत्नी राजपूत थी। जिसे किसी युद्ध में बंदी

बनाया गया था। इसका जबरन धर्म परिवर्तन किया गया। इस राजपूत औरत से चिश्ती की एक पुत्री का जन्म हुआ था, जिसका नाम बीबी जमाल है और उसकी कब्र आज भी अजमेर स्थित दरगाह के परिसर में है। तत्कालीन फारसी इतिहासकारों ने इनके बारे में यह दावा किया है, कि उन्होंने दस लाख काफिरों को कुफ्र की जहालत से निकालकर इस्लाम के नूर से रोशन किया, अर्थात् इनका धर्मान्तरण करवाया। इस सूफी की प्रेरणा से अजमेर और नागौर में अनेक मंदिरों को ध्वस्त किया गया। अजमेर स्थित ढाई दिन का झोपड़ा इसका ज्वलंत उदाहरण है। लेकिन भारत की नई पीढ़ी जिसका ब्रेनवॉश हो चुका है, वह इस दरगाह पर अमिताभ बच्चन को सिर पर गुलाबों की टोकरी उठाए देखता है तो गदगद हो जाता है। यह पीढ़ी इस दरगाह के पीछे का खूनी इतिहास जानने में रुचि नहीं रखती। अंग्रेजी में इसे कमंकसल सहदवतंदबम (घातक अज्ञान) कहा जाता हैं। इसी प्रकार बंगाल के खूंखार और लड़ाके सूफियों में एक मुख्य नाम सिलहट के शेख जलाल का भी है। गुलजार ए अबरार नामक ग्रंथ के अनुसार इस सूफी ने राजा गौढ़ गोविंद को हराया। शेख जलाल का अपने अनुयायियों को स्पष्ट आदेश था कि वह हिन्दुओं को इस्लाम कबूल करने की दावत दे और जो उससे इंकार करे उसे फौरन कत्ल कर दें।

कश्मीर का इस्लामीकरण करने में भी सूफियों का महत्वपूर्ण योगदान है। जाफर मिक्की ने कश्मीर में इस्लाम नामक फारसी पुस्तक में यह स्वीकार किया है कि तुर्किस्तान से आने वाले 21 सूफियों ने नुरुद्दीन उर्फ नंदऋषि के नेतृत्व में कश्मीर के 12 लाख हिन्दुओं को जबरन मुसलमान बनाया था। इन सूफियों ने उन सभी पॉच लाख हिन्दुओं का कत्ल कर दिया, जिन्होंने इस्लाम कबूल करने से इंकार कर दिया था। कश्मीर के कुख्यात धर्मांध और कट्टरवादी मुस्लिम शासक सुल्तान सिकंदर बुतशिकन ने कश्मीर घाटी में स्थित सभी हिन्दू मंदिरों को तहस नहस करवा दिया था। मार्तंड के विख्यात सूर्य मंदिर के खंडहर आज भी इन सूफियों के जुल्मों की कहानी के साक्षी हैं। इस सुल्तान ने अवंतीपुर के विष्णु के भव्य मंदिर को भी तहस नहस करवाया था, यह बात भी कश्मीर में बाकायदा लिखित स्वरुप में उपलब्ध है। वैसे तो सूफी शब्द के और भी दो तीन अर्थ निकलते हैं, लेकिन इसका लौकिकार्थ होता है, किसी का भरोसा जीतकर उसे मूर्ख बनाना। ऑखो में धूल झोंककर, स्वयं को आध्यात्मिक एवं मौलवी टाईप के स्वांग में रचकर भोले भाले हिन्दुओं को इस्लाम की तरफ खींचने की चाल अभी तक काफी सफल रही है, परन्तु अब उम्मीद करता हूॅ कि गॉव–गॉव में हरी चादरें फैलाकर खैरात मांगने वाली टोली अथवा हाईवे एवं महत्वपूर्ण सामरिक ठिकानों के आसपास अथवा सड़क के दोनों तरफ रातोंरात अचानक उग आई दरगाहों मजारों और चमत्कारों का दावा करने वाली इन लाशो के बारे में आप लोग गहरी पड़ताल तो करेंगे ही। हिन्दू नाम वाले किसी फिल्मी हीरो को किसी दरगाह पर चादर चढ़ाते हुए देखकर लहालोट भी नहीं होंगे। वास्तव में सूफी मत, इस्लामी ऑक्टोपस की ही एक बांह भर है।

उत्तर– धर्म के दो स्वरुप होते है–1.गुण प्रधान 2. पहचान प्रधान। गुण प्रधान धर्म व्यक्तिगत आचरण तक सीमित होता है। कर्तव्य प्रधान होता है, संस्थागत चरित्र होता है। जबकि पहचान प्रधान धर्म संख्या की छीनाझपटी में लगा रहता है, अधिकार प्रधान होता है, संगठन प्रिय होता है। हिन्दुत्व गुण प्रधान धर्म की श्रेणी में आता है और इस्लाम पहचान प्रधान श्रेणी में। मैं स्वयं हिन्दु हूॅ, गुण प्रधान धर्म को प्राथमिकता देता हूॅ तथा सूफीमत का प्रशंसक हूॅ। प्रशंसा भी दो आधारों पर होती है। 1 सिद्धांत रुप में 2 तात्कालिक नीतियो के अन्तर्गत। मैं दोनों परिस्थितियों में सूफीमत का प्रशंसक हूॅ। किन्तू मैं नहीं कह सकता कि नरेन्द्र मोदी परिस्थितिजन्य नीतियों के आधार पर प्रशंसा कर रहे है अथवा सैद्धांतिक आधार पर। इतना अवश्य सच है कि संघ परिवार सूफीमत का सैद्धांतिक आधार पर प्रशंसक नहीं है। भले ही परिस्थितियों के आधार पर वह प्रशंसा में शामिल हो अथवा छुप गया हो।

आप इस्लामिक इतिहास के जानकार है और मैं इतिहास का क ख ग घ भी नहीं जानता। इतना अवश्य है कि मैंने विभिन्न विषयों पर इतिहासकारों में ही दो विपरीत धारणाओं के निष्कर्ष सुने है और पढ़े भी हैं। मैंने इतिहासकारों से ही सुना है कि ताजमहल मुस्लिम राजा ने बनवाया था। दूसरी और मैंने अन्य इतिहासकार पी.एन.ओक तथा कुछ अन्य के निष्कर्ष पढ़े कि ताजमहल हिन्दुओं का बनवाया हुआ था जिस पर मुसलमानों ने बलपूर्वक कब्जा कर लिया। मैंने इतिहास में ही पढ़ा है कि भारत में कुछ कट्टरवादी मुस्लिम राजाओं ने धर्मान्तरण के लिए हिन्दुओं पर अत्याचार किये। ऐसे कट्टरवादी मुसलमानों में सूफी लोग नहीं थे। दूसरी ओर आपने इतिहासकार होने के नाते बताया कि सूफियों ने इस्लाम मत के प्रचार के लिए हिन्दुओं पर भारी अत्याचार किये। मेरी अब तक की व्यक्तिगत धारणा यह रही है कि सूफियों ने धर्मान्तरण के लिए प्रेम और सद्भाव का सहारा लिया हिंसा और बलप्रयोग का नहीं। आज भी सूफी दरगाहों पर 90 प्रतिशत हिन्दुओं का जाना देखा जाता है। तो उसमें कहीं बल प्रयोग नहीं दिखता और यदि प्रेम से लोग मुसलमान बन रहे है या मजारों में जा रहे है तो यह कोई गलत बात भी नहीं है। यदि हिन्दू अपने लोगों को प्रेम और सद्भाव नहीं देगा और कोई उसकी पूर्ति के लिए मुसलमान बनेगा तो यह किसी दृष्टि से कोई आलोचना का विषय नहीं है बल्कि आत्म चिंतन का विषय है। वर्तमान में सूफीमत जिस प्रकार का दिखता है यदि वैसा ही सूफीमत पहले भी था और वैसे ही सूफीमत के आधार पर भारत में धर्मान्तरण हुआ है तो मैं सूफीमत की प्रशंसा ही करुॅगा। वैसे मेरे विचार में भारत में धर्मान्तरण कराने में कट्टरवादी मुसलमानों का हिंसक मार्ग अधिक महत्वपूर्ण रहा है और सूफी मार्ग कम।

आपने सूफियों के बारे में जो ऐतिहासिक तथ्य दिये है वे कितनी विश्वसनीय पुस्तकों से लिये गए है और कितनी एकपक्षीय पुस्तकों से यह मैं नहीं जानता। लेकिन मैं इतना अवश्य समझता हूॅ कि यदि आपकी बात सच भी हो तो वर्तमान परिस्थितियों में सूफीमत को बढ़ावा देकर गैर सूफीमत से अलग करना एक सफल कूटनीति है और इस कूटनीति में आपका लेख बाधक ही होगा, साधक नहीं। वैसे तो मैं इस बात के ही खिलाफ हूॅ कि साम्यवाद के बढ़ते हुए खतरे को लक्ष्य न बनाकर इस्लाम पर ध्यान केन्द्रित किया जाये लेकिन यदि हम मान भी ले कि इस्लाम साम्यवाद से अधिक खतरनाक समझकर आप ऐसी चिंता कर रहे है तब भी मैं आपके मार्ग से सहमत नहीं हूॅ।

हिन्दुत्व तथा इस्लाम में मूलभूत फर्क होता है हिन्दुत्व सर्वधर्म समभाव वसुधैव कुटुंबकम की नीतियों पर विश्वास करने वाला है। जबकि इस्लाम दारुल इस्लाम को लक्ष्य मानकर चलता है। हिन्दू सुरक्षा के लिए बलप्रयोग कर सकता है किन्तु विस्तार के लिए नहीं। किन्तु

इस्लाम की कार्य प्रणाली ठीक इसके विपरीत हैं। इस्लाम किसी व्यक्ति के कथन को अंतिम मानता है, जबकि हिन्दुत्व पूरी तरह इसके विरुद्ध है। कोई नास्तिक भी हिन्दू हो सकता है तो कोई मूर्तिपूजा समर्थक या विरोधी भी। कोई राम का समर्थक भी हिन्दू हो सकता है तो कोई रावण की पूजा करने वाला भी। हिन्दुत्व एक जीवन पद्धति है पूजा पद्धति नहीं। जबकि इस्लाम एक पूजा पद्धति मात्र है। हिन्दुत्व विचार मंथन पर विश्वास करता है तो इस्लाम शक्ति प्रयोग पर। दुनियां में हिन्दुत्व ही एकमात्र ऐसी विचारधारा है जो संख्या विस्तार के लिए किसी छीनाझपटी के विरुद्ध है। हिन्दुत्व के विरोधी अनेक विचारधाराओं के लोग भारत में आये और उनमें से शांतिप्रिय लोग हिन्दुत्व में समा गए। मैंने स्वयं पढ़ा है और वह भी गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित पुराणों में पढ़ा है कि मोहम्मद साहब एक बहुत ही अच्छे व्यक्ति थे। इसका अर्थ यह हुआ कि प्राचीन समय में हमारे विद्वानों ने शांतिप्रिय मुसलमानों को समेटने की भरसक कोशिश की थी। इसका अर्थ ये हुआ कि यदि कोई मुसलमान भी शांतिप्रिय है भले ही वह हजरत मुहम्मद का भक्त हो या अल्लाह को मानता हो तो वह भी हिन्दू ही है। पता नहीं यह प्रयास क्यों असफल हुआ। या तो कट्टर मुसलमान इस प्रयास को असफल करने में सक्रिय हो गये होंगे अथवा आप जैसे विचारधारा के लोगों ने इस प्रयास को असफल किया होगा। यदि यह प्रयास सफल हो जाता तो वर्तमान स्थिति आती ही नहीं। हिन्दुत्व में बौद्ध, जैन, सिख के साथ साथ इस्लाम भी एक आंतरिक सम्प्रदाय बन गया होता। मैं अब भी मानता हूँ कि हमें दोनों तरफ के प्रयासों को अनुमति देनी चाहिए। जो हिन्दुत्व की विचारधारा से सहमत होकर इस्लाम का पालन करना चाहते है। उनके प्रयासों को भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। मैं ऐसे प्रोत्साहन में सक्रिय हूँ साथ ही जो लोग इस्लामिक मार्ग पर चलकर इस्लाम से टकराना चाहते है उनका भी मैं तब तक विरोधी नहीं हूँ जब तक इस्लाम की अपनी सोच और कार्य प्रणाली में कुछ बदलाव न दिखें। अंत में मेरा आपको सुझाव है कि परिस्थितियों को देखते हुए आप अपनी प्राथमिकताओं पर पुनः विचार करे और भावना में बहकर सूफी मार्ग की एकपक्षीय आलोचना से बचें।